जन गर्जन

वर्ष 23 अंक 9 मासिक नई दिल्ली मई 2009 विक्रमी संवत्-2066 प्रधान संपादकः देवब्रत बिश्वास, वार्षिक-शुल्कः 60रुपये

वामपंथी एककीरण और साम्राज्यवादी विरोधी संघर्ष के लिये - वामपंथियों को 22 जून का आह्वान

देवब्रत बिश्वास, महासचिव, अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक

22 जून फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना का दिवस है। इसके संस्थापक - अध्यक्ष नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने बहुत पूर्व सन् 1939 में ही साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष और वाम शक्तियों के एकीकरण हेतु आह्वान किया था। अब तक 72 वर्ष बीत गये परन्तु उनकी पुकार उनका आह्वान उतना ही प्रासंगिक बना हैं। हमारे देश के ऊपर सीधा ब्रिटिश साम्राज्य का शासन समाप्त हो गया। यहाँ तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधिनायक बनने का दौर भी समाप्त हो गया अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रभुत्व का दौर शोषण के अनेक रास्ते अपनायें हुये हैं। भारत कोई अपवाद नहीं है और अमेरिकी साम्राज्यवाद के दुष्प्रभाव धीरे-धीरे भारत पर भी पड़ने लगा है। भारत-अमेरिकी परमाणु समझौता कर जार्ज डब्ल्यू बुश ने प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के रूप में नये मित्र को पा लिया है और भारत को अमेरिका ने अपना सामरिक भागीदार बना लिया है। यह भागीदारी संवेदनशील क्षेत्रों जैसे सैनिक आपरेशन और हमारे देश के विदेश नीति को प्रभावित करता है जिससे देश की संप्रभुता खतरे में है। मुम्बई के 26/11 आतंकी हमले के कुछ घंटे बाद हमने पाया कि उस इलाके में अमेरिकी एजेन्टों और अधिकारियों को मुख्य स्थानों पर स्थापित होते पाया है। पिछले लोकसभा के चुनाव के दौरान चुनाव प्रचार के समय हमने अनेक अमेरिकी दूतों और विदेश मामलों से सम्बद्ध अधिकारियों को देश के अनेक भागों में पाया जो अनेक राजनैतिक दलों के नेताओं के साथ सौदेबाजी करते देखे गये और इस तरह देश के राजनैतिक तथा चुनाव तंत्र को प्रभावित करने का कार्य किया है। अब कांग्रेस के पुनः सत्ता हासिल करने और डॉ. मनमोहन सिंह के दूसरे क्रमवार प्रधानमंत्री बनने से यह समझा जा सकता है कि हमारे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक मामलों और तंत्र को अमेरिकी दुष्प्रभाव और गहरे-चोट पहुँचायेगा। अपने अनुभवों के आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे राष्ट्रीय हितों को अमेरिकी साम्राज्यवाद बहुत नुकसान पहुँचायेगा। इस तरह साम्राज्यवादी और पूँजीवादी ताकतों जो अमेरिकी साम्राज्यवाद से जुड़ी है से लड़ने और इसके विरुद्ध लामबंद होने का अवसर पूरी तरह से प्रासंगिक है।

15वीं लोकसभा में कांग्रेस और उसके सहयोगी घटक दल के विजयी होने के कारण पूँजीवादी और दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी तत्व, बुर्जुवा वर्ग उभर कर सामने आ गया है और देश के अन्दर मौजूद प्रगतिकामी तत्वों को पूरी तरह कुचलने के लिये तैयार हो रहा है। इस खतरनाक ढर्रे को देश की वाम शक्तियाँ ही रोक सकती है। अतः साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ निर्णायक संघर्ष छेड़ने के लिये वाम को एकजुट होकर मोर्चा लेना होगा। 22 जून जो फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना दिवस है हमें इस महान उद्देश्य की ओर प्रेरित करता है। हम जनता से पुरजोर अपील करते हैं कि वह नेताजी के क्रांतिकारी आह्वान को सुनकर /महसूस कर कि साम्राज्यवादी शक्तियों से भारत की रक्षा मानवता की रक्षा के समान है - आगे आने के लिये उठ खड़ी हो।

नई दिल्ली 18 मई 2009 को केन्द्रीय सचिव मण्डल की सभा में प्रस्तावित प्रस्ताव

15वीं लोकसभा चुनाव पर अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक का विश्लेषण

अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक की केन्द्रीय सचिव मण्डल की बैठक दिनांक 18 मई, 2009 को नई दिल्ली में संपन्न हुई, जिसमें 15वीं लोकसभा के चुनाव परिणाम पर विस्तृत रूप से चर्चा की गयी।

अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक जनादेश को नम्रता से स्वीकार करती है। पार्टी का विचार है कि गैर-कांग्रेस(आई), गैर-भाजपा विरोधी कार्यक्रम के तहत तीसरे मोर्चे के गठन की स्थिरता और विश्वसनीयता पर लोगों में भ्रांति पैदा हो गयी थी, जिसके कारण कांग्रेस को सत्ता प्राप्त करने में मददगार साबित हुयी। भाजपा की मुद्दा विहीन जन प्रचार, अल्पसंख्यक विरोधी भूमिका, दिशाहीन और नकारात्मक अभियान से जनता में विरोध पैदा हो गया। जिससे

कांग्रेस को सत्ता में पुन: आने में सहयोग मिला।

सभी गैर-कांग्रेस(आई) और गैर-भाजपा पार्टियों के साथ मिलकर तीसरे मोर्चे का सम्मिश्रण सही कदम था। लेकिन वामदल तथा मोर्चे के अन्य दल इसके संयोजन के लिये एक उचित संरचना प्रदान करने में विफल रहे। मोर्चे के सभी घटक दल विकल्प के लिये एक अनुशासनात्मक राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रदान करने में विफल रहा है। मोर्चे के नेताओं ने कोई भी राष्ट्रव्यापी संयुक्त अभियान नहीं किया। इन सभी कमियों के कारण तीसरे मोर्चे के व्यवहार पर लोगों में भ्रम पैदा हो गया। कांग्रेस (आई) और भाजपा के मिडिया में निराधार और गलत बयानी से तीसरे मोर्चे को काफी नुकसान उठाना पड़ा।

अल्पसंख्यकों से संबंधित सभी तथ्यों को गलत ढंग से जोड़-तोड़ कर कांग्रेस अल्पसंख्यक वोटों का समर्थन प्राप्त करने में सफल रही। हालांकि कांग्रेस (आई) ने अपने दशकों पुराने शासन के दौरान अल्पसंख्यक समुदाय को कई मुद्दों पर वंचित करती रही हे।

केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट की पार्टियों के बीच का विरोध वामदल की हार का मुख्य कारण बनी। केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट जनता के बीच सरकार की कल्याणकारी योजनाओं और कार्यों का प्रचार करने में असफल रहीं।

पश्चिम बंगाल में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण के मामले में काफी भ्रम पैदा हो गया था। इसके अलावा उद्धत व्यवहार और नौकरशाही पर अत्यधिक निर्भरता वाम मोर्चे की हार का मुख्य कारण रही। नन्दीग्राम की दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने वाम दलों और वाम सरकार की छवि को भी काफी नुकसान पहुँचाया। तृणमुल कांग्रेस, कांग्रेस, माओवादीयों, अलगाववादियों ने वाम विरोधी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों के साथ मिलकर झूठे और निदंनीय प्रचार किया, जिसके कारण वाम विरोधी ताकतों को जीत हासिल हुयी।

केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट को और पश्चिम बंगाल में लेफ्ट फ्रंट को इस झटके से सबक सीखना चाहिये। गलतियों के सुधार के लिये ईमानदारी के साथ पूर्ण प्रयास करना आवश्यक है। पार्टी कैडरों और नेताओं को लोगों के साथ नियमित रूप से और घनिष्ठ संबंध बनाये रखना चाहिये। सत्ता सुख के कारण आलसता से बचा जाना चाहिये। घटक दलों को आपस में उचित व्यवहार करना चाहिये तथा एक-दूसरे के विचारों और भावनाओं का सम्मान करना चाहिये

अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक (ए.आई.एफ.बी.) का मानना है कि यह एक अस्थायी झटका है, जो हम सभी के लिये आत्मनिरीक्षण का एक मौका है। अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक विभिन्नि राज्यों से चुनाव परिणामों की विस्तृत रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद और अधिक गहनता से विश्लेषण करेगा।

अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक का मानना है देश भर में बेहतर वाम समन्यवय स्थापित करना चाहिये। कांग्रेस और भाजपा के विरोध में स्थिर और राजनीतिक उन्मुख जन विकल्प की संभावनाओं को तलाशने के लिये हमारी पार्टी प्रयासरत रहेगी।

त्रिपुरा में वाम उम्मीदवरों की शानदार सफलता पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती हैं।

सिद्धांतवादी राजनीति की जगह भरने को तैयार हों परिवर्तनवादी ताकतें

अतुल कुमार

लोकसभा चुनाव के परिणाम में कांग्रेस को 205 सीटें मिलने के बाद पार्टी की चापलूसी परंपरा का निर्वाह करते हुए राहुल गांधी और सोनिया गांधी की जो जयकार हो रही है, वह तो संभावित ही थी, लेकिन इस बार आश्चर्यचकित कर देनेवाली बात यह है कि देश का पूरा मीडिया भी इस झूठी जय-जयकार में शामिल हो गया है। इस मामले में मीडिया ने अपने वाम-दक्षिण होने के सारे भेद को खत्म कर लिया है।

वस्तुस्थिति पर नजर डालें तो कांग्रेस को मिली सीटें 1991 के चुनाव में मिली सीटों से कम ही हैं। इसके बाद कांग्रेस को हमेशा 150 से कम ही सीटें मिलती रही हैं। इस बार अंतर सिर्फ इतना है कि मुख्य विपक्ष का खम ठोकने वाली भारतीय जनता पार्टी सीटों के मामले में पिछले चुनाव से और नीचे चली गयी है। हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर लड़ाई के दो मुख्य ध्रुव कांग्रेस-भाजपा ही बने रहे। साथ ही सरकारों पर राजनीतिक दबाव बनाए रखनेवाले वामदलों की ताकत बुरी तरह से क्षीण हुई है। बाकी क्षेत्रीय दलों के उभार में कहीं कोई कमी नहीं आयी है और न ही लोग इन छोटे दलों से निराश हुए हैं। चुनाव के परिणाम बताते हैं कि देश में क्षेत्रीय अस्मिताएं तमाम कमियों और क्षुद्र राजनीति का अड्डा होने के बावजूद न केवल बरकरार है बल्कि लगातार बढ़ रही हैं। लगता है कि मीडिया जिस तरह से राहत और खुशी का इजहार कर रहा है वह केवल इन वामपंथी दलों के ध्वस्त होने की ही खुशी है न कि देश में किसी कथित दो दलीय व्यवस्था कायम होने या राजनीति को अस्थिर करने वाली ताकतों के क्षय की। यह मीडिया के उच्चवर्गीय चरित्र को ही दिखलाता है जो अपने ख्यालों में ही आकाश कुसुम खिला रहा है। यह खुशी इसलिए भी है कि वामपंथी पार्टियां जिस तरह से बाजारवाद को उद्धात मनमोहन-चिदबंरम-मोंटेक की तिकड़ी पर तलवार लटकाए रखती थी, उससे मीडिया के कर्ताधर्ताओं और विज्ञापनदाताओं का हित ही प्रभावित हो रहा था और सरकार को खुले खेल की कभी पूरी छूट नहीं मिल पाती थी। कांग्रेस का जो थोड़ा उभार इस बार दिखा वह मुख्य विपक्षी पार्टी भाजपा के अंदर आडवाणी बनाम शेखावत, मोदी के अंतर्कलह, भाजपा द्वारा चुनावी लड़ाई को व्यक्ति बनाकर मनमोहन सिंह पर कमजोर होने का निजी आक्षेप और वरुण गांधी नरेन्द्र मोदी द्वारा मुस्लिम विरोधी भड़काऊ भाषणों के कारण है। उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह से दोस्ती के कारण मुसलमानों का विश्वास सपा से उठना भी एक कारण रहा है।

जो लोग इस चुनाव से निकले नतीजों में देश में दो दलीय प्रणाली की स्थापना देख रहे हैं उनके लिए निर्वाचन आयोग द्वारा जारी आंकड़े आईना का काम करेंगे। उल्टे कांग्रेस-भाजपा जैसे कथित राष्ट्रीय पार्टियों की मिले वोटों से कहीं अधिक वोट बाकी शक्तियों को मिली है। निर्वाचन आयोग के अनुसार ही, इस बार कांग्रेस को 28.52 फीसदी वोट मिले जबकि भाजपा को केवल 18.83 फीसदी, बसपा को 6.18 फीसदी, माकपा को 5.34 फीसदी, राकांपा को 2.04 फीसदी, भाकपा को 1.43 फीसदी, राजद को 1.27 फीसदी और अन्य पार्टियों व निर्दलीयों को 36.4 फीसदी वोट मिले हैं। यहां साफ है कि कांग्रेस और भाजपा दोनों को सम्मिलित रूप से मिले वोट का प्रतिशत केवल 47.35 फीसदी ही रहा जबकि 2004 में दोनों को मिलाकर 49.5 फीसदी वोट मिले थे। यानी, दोनों राष्ट्रीय दलों को मिलाकर भी 50 फीसदी वोट नहीं मिले। यह आंकड़ा उन विश्लेशकों के मुंह पर तमाचा जैसा है जो देश को दो दलीय व्यवस्था की ओर बढ़ते देख रहे हैं।

यह अलग बात है कि अगर पिछली सरकार में वामदलों का प्रभावी हस्तक्षेप न रहता तो बैंकों का निजीकरण, बीमा कंपनियों का निजीकरण, पीएफ फंड का शेयर बाजार में निवेश आदि कई कानून पारित हो जाते। ऐसे में आज जो वैश्विक मंदी आयी है, उसका जितना भयंकर दुष्प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। खुद मनमोहन सिंह ने ही यह स्वीकार किया था कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने हमे मंदी में भी मजबूती प्रदान की है। दूसरी ओर वामदलों के लिए निराशाजनक बात यह रही कि खासकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी तमाम राजनीतिक और वैचारिक पूंजी को नंदीग्राम और सिंगूर में बड़े पैमाने पर जनसंहार कर और किसानों को तबाह कर नष्ट कर लिया। यहां तक कि उसने टाटा और सलेम समूह के लठैत का काम करते हुए अपने सहयोगियों -भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लॉक और रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी तक को नहीं बख्शा। उनके विरोध और उनकी आपत्तियों को तो नहीं ही सुना उल्टे उनपर हमले भी किये। इसका असर हुआ कि बंगाल में वामपंथी बुद्धिजीवी भी उससे अलग होते गये। कभी देश भर में विपक्षी राजनीति के एक मजबूत स्तंभ के रूप में विश्वसनीयता हासिल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बंगाल और केरल के अंतर्कलह और नंदीग्राम-सिंगुर के पाप से उबरने में ही उलझी रही। माकपा ने हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर तीसरे मोर्चे के पिटे-पिटाए प्रयोग को अपने स्तर पर करने की कवायद शुरू की लेकिन यह एक तो काफी देर से उठाया गया कदम था और दूसरे इसमें जिन ताकतों पर भरोसा किया गया वे पहले से ही अविश्वसनीय साबित हो चुकी हैं। इसका परिणाम सामने है।

लेकिन बंगाल से लेकर पूरे उत्तर और मध्य भारत पर नजर दौड़ायें तो हम पाते हैं कि इसका फायदा जनता ने कहीं भी भाजपा या कांग्रेस को नहीं दिया है। पश्चिम बंगाल में माकपा की हार का फायदा क्षेत्रीय पार्टी तृणमूल कांग्रेस को मिला है। तृणमूल के साथ गठबंधन के कारण ही कांग्रेस को यहां वाम विरोधी मत मिले हैं। बिहार में कांग्रेस अपने ही घटको से बुरी तरह उलझी यहां उसे पहले की तीन सीटें भी नहीं मिल पायीं। यहां पर भी फायदा जदयू और उसके साथ होने के कारण भाजपा ने उठाया। बिहार की राजनीति को देखें तो साफ है कि जनता ने इस बार नीतीश कुमार की सरकार को विकास के नाम पर जितना वोट दिया है उससे कहीं ज्यादा उस लंपट और बकवासी राजनीति के खिलाफ मतदान किया है जिसके आतंक के साए में राज्य की जनता 1990 से 2005 तक की लालू-राबड़ी राज में रहती आयी थी। बिहार में लोगों की बातों में और उनके जेहन मे उस आतंकी और जंगल राज की याद्दाश्त को साफ देखी जा सकती है। अभी नीतीश कुमार के शासन में जो कुछ सकारात्मक काम हुए हैं, उनमें अपराध पर अंकुश लगा है। लूटपाट की प्रवृत्ति रुकी है और कुछ हद तक विकासात्मक काम भी आगे बढ़े हैं। लालू प्रसाद यादव के मुकाबले नीतीश की सौम्य भाशा और छवि ने भी जदयू-भाजपा गठजोड़ को काफी मदद की है। चुनाव प्रक्रिया के दौरान भाकपा महासचिव ए.बी. बद्र्धन भी नीतीश को धर्मनिरपेक्ष घोशित कर चुके हैं। यहां भाजपा के वोट में बेतहाशा वृद्धि धर्मनिरपेक्ष राजनीति करनेवालों के लिए चिंता की बात है। लेकिन बिहार-उड़ीसा में दूषित ताकतों के निशेध भाव पर टिका यह जनमत ज्यादा दिनों तक बना नहीं रह पाएगा। लोग स्थिर होने पर विभिन्न जन समस्याओं पर विचार करेंगे तो पाएंगे कि इन जनपक्षीय मुद्दों पर ये पूंजीवादी, बाजारवादी सरकारें भी ढोल की पोल साबित हो रही हैं। ऐसे में एक बड़ा राजनीतिक खालीपन बनेगा।

दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में चमत्कार के स्तर पर जाकर कांग्रेस ने अपनी जड़ फिर से जमाई है। राहुल गांधी की करिश्माई छवि का जो सर्वाधिक चारणगान हो रहा है, वह उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की सतही पुनर्वापसी को ही देखकर ही हो रहा है। कांग्रेसी नक्कारखाने में इस झूठ का इतना शोर है कि सच्चाई यहां तूती की आवाज साबित हो रही है। सच्चाई जब खुलेगी तब सामने आएगा कि जिन क्षेत्रों में कांग्रेस का वोट बढ़ा है और सपा या बसपा का वोट घटा है, उन सबके पीछे राज्य की एक शख्सियत- पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह रहे हैं। कल्याण सिंह को साथ लेकर समाजवादी पार्टी ने अपनी परंपरागत मुस्लिम वोट खोया तो वरुण गांधी के मुस्लिम विरोधी भाषणों के कारण भी मुसलमानों को सपा से अधिक सुरक्षित जगह कांग्रेस में ही दिखी। यही कारण रहा कि बिना मांगे ही कई क्षेत्रों में कांग्रेस को वोट मिल गए। यह वोट स्थायी न होकर क्षणिक भय से उपजा और नकारात्मक रहा है। भाजपा को यहां न तो वरुण और नरेन्द्र मोदी अपने जहरीले भाशणों से कोई मदद नहीं कर पाए और न ही भाजपा की अपनी राम मंदिर की रणनीति काम कर पायी। हरियाणा, पंजाब में भी कांग्रेस का मुकाबला क्षेत्रीय दलों अकाली दल और इंडियन नेशनल लोकदल से रहा और यहां कांग्रेस ने अपनी शक्ति को बढ़ाया है। मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों में जिस तरह से दो ध्रुवीय राजनीति है उसमें अलग से किसी ताकत के अनायास उभरने की कोई संभावना पहले भी नहीं थी।

कुल मिलाकर इस बार मतदान में जनता ने जातिवादी, सांप्रदायिक, ब्लैकमेल करनेवाले और क्षेत्रवाद पर राजनीति करने वालों को नकारा है। बिहार में इसी बूते पिछले दो दशकों से सत्ता पर छाए लालू प्रसाद यादव का पराभव हुआ तो राम विलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी पूरी तरह से नेस्तनाबूद हो गयी। उत्तर प्रदेश में सर्वजन की होने का दम भरनेवाली मायावती की बहुजन समाज पार्टी केवल तीन साल पूर्व ही खुद को प्राप्त 210 विधानसभा सीटों के आंकड़े के आधे को भी इस लोकसभा में नहीं प्राप्त कर सकी। उसे मात्र 20 सीटें मिली हैं। इसी तरह समाजवादी पार्टी की सीटें पिछले लोकसभा चुनाव मे मिली 40 सीटों के मुकाबले आधे के करीब ही रह गयीं। सपा ने 23 सीटें जीतीं। (उत्तर प्रदेश में एक लोकसभा सीट के दायरे में पांच विधानसभा क्षेत्र आते हैं)। भाजपा किसी तरह सांप्रदायिक आग भड़काकर अपनी पिछली संख्या को कायम रख सकी। प्रदेश में कांग्रेस की अप्रत्याशित वापसी हुई है, जिसका कारण हम ऊपर बता आए हैं कि यह वोट नकारात्मक, बाबरी मस्जिद के विध्वंसक कल्याण सिंह की सपा से दोस्ती और वरुण-नरेन्द्र मोदी के आग उगलने की प्रतिक्रिया में था। बिहार-उड़ीसा में नीतीश कुमार और नवीन पटनायक को मिला जनसमर्थन विकास और उनकी व्यक्तिगत सौम्य छवि पर है। भाजपा की सहयोगी होने के

बावजूद नीतीश को वामपंथी पार्टियां तक धर्मनिरपेक्ष कह चुकी हैं तो कंधमाल कांड के बाद भाजपा से पल्ला झाड़ चुके नवीन को वामपंथी पार्टियों ने समर्थन भी दिया था। कुल मिलाकर जनता ने साफ कर दिया है कि वह अब ऐसे उल जलूल की ओछी राजनीति के नाम पर झांसे में आने से रही। बिहार- उत्तर प्रदेश में लालू- रामविलास के जाति आधारित और देश भर में भाजपा के राम मंदिर बनाने के संकल्प वाली राजनीति बुरी तरह पिट गयी।

लेकिन इन प्रदेशों में सबसे चिंतित करनेवाली बात जो दिखाई दे रही है, वह परिवर्तनवादी -प्रगतिशील धारा का अंत है। यह कोई जनता की इच्छा के कारण नहीं बल्कि इन धाराओं की आपसी नालायकी की वजह से हुआ है। बिहार में शुद्ध रूप से जातिवाद की राजनीति पर आधारित लालू को 15 साल तक समर्थन देकर वहां की जनाधार वाली भाकपा ने अपने को धराशायी कर लिया तो बिहार में भी उसकी बची-खुची ताकत का अंत उसी तरह की राजनीति करनेवाले मुलायम सिंह को समर्थन के कारण हुआ। बिहार में वामपंथ के नाम पर भाकपा-माले है लेकिन उसकी पहचान एक क्षेत्रीय तौर पर ही है और उसकी विश्वसनीयता न के बराबर है। उधर लोहिया के समाजवाद और जयप्रकाश आंदोलन की गर्भ से निकले लालू- मुलायम की पार्टियां पूरी तरह जातिवाद और भ्रश्टाचार के गर्त में डूबी हैं। इन पार्टियों पर कारपोरेट घरानों, उद्योगपतियों, उनके एजेंटों और सत्ता के शुद्ध दलालों का कब्जा हैं।

इसके साथ ही इस चुनाव में दूसरी चिंता की बात यह रही कि पूरे प्रचार अभियान के दौरान शासन-प्रशासन में बड़े पैमाने पर व्याप्त भ्रश्टाचार, कुशासन, देश में बढ़ती महंगाई, गरीबी, किसानों की बदहाली, मजदूरों का विभिन्न स्तरों पर होनेवाला शोषण, मंदी के कारण नौकरियों से हो रही छंटनी और बेरोजगारी कोई मुद्दा नहीं बना। न तो राजनीतिक दलों के स्तर पर और न ही जनता के स्तर पर। जनता से दबाव न बनने के कारण ही विपक्षी दलों ने भी इन मुद्दों को उठाने की जहमत नहीं दिखाई।

जानने वाले जानते होंगे कि कभी उत्तर भारत में कम्युनिस्ट-सोशलिस्ट आंदोलन की आंधी थी। इस आंदोलन के मूल में जनता के मुद्दे जैसे महंगाई, बेरोजगारी, सामाजिक न्याय और भ्रश्टाचार हुआ करते थे। 'दाम बांधो काम दो', संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़ा पावे सौ में साठ' जैसे लोकप्रिय नारों की गूंज चुनावों में आम थीं। 1967 में इसी आंधी की चपेट में कई राज्यों में कांग्रेस की जड़ उखड़ी और संविद सरकारें सत्ता में आयी। लेकिन यह धारा चिरस्थायी नहीं रह सकी। इसका कारण भी इसी आंदोलन की जड़ में विद्यमान है। समाजवादी पार्टी ने हिन्दी प्रदेशों में पिछड़े- दलितों को राजनीतिक अधिकार दिलाने, उन्हें सत्ता के मुख्य केंन्द्र तक पहुंचने और सामाजिक बराबरी के लिए प्रेरित और संघर्षशील तो बनाया लेकिन इस क्रम में उन्हें सिद्धांतों की कसौटी पर कसने और उसकी धार देने का कोई प्रयास नहीं किया। आचार्य नरेन्द्र देव से शुरू होकर डॉ. राममनोहर लोहिया तक समाजवादी आंदोलन अपने सही दिशा में रहा लेकिन लोहिया के जीवन काल में ही पार्टी में खुली सदस्यता के कारण तमाम अवांछित तत्व संगठन पर हावी हो गए। इसका परिणाम हुआ कि 1967 में लोहिया के निधन के बाद ऐसे ही तत्व संगठन की सत्ता में अनेक प्रकार के अनैतिक और अवैध हथकंडे अपनाकर हावी होते गए। इसमें सबसे सुगम रास्ता उन्हें जाति की राजनीति लगी और चूंकि उनमें किसी नीति-सिद्धांत के प्रति कोई प्रतिबद्धता न के बराबर थी। संगठन के स्तर पर कार्यकर्ताओं को ऐसी नीतियों का पाठ पढाने का काम भी लोहिया के बाद ही समाप्त हो गया। कम्युनिस्टों में यह काम कुछ और दिनों तक चला लेकिन वर्तमान में वहां भी प्रशिक्षण शून्य ही है। जब मैंने इस बारे में अपने भाकपा माले के एक मित्र से चर्चा की तो उन्होंने माले में भी इस तरह की चर्चा न के बराबर होने की बात ही कही।

उपरोक्त राजनीतिक विश्लेषण से तथ्य उभर कर आ रहे हैं कि आम तौर पर पूरे देश में और खासकर उत्तर में परिवर्तनवादी जनाधारित राजनीति के लिए पूरा मैदान खाली है। इस दिशा में काम करनेवाला कोई भी बड़ा या छोटा प्रभावी दल नहीं है। हां, इन छोटे और स्थानीय स्तर पर कई छोटे-संगठन और समूह सक्रिय हैं, जिनका आकार और क्षमता और स्रोत बहुत दुर्बल होने के कारण प्रभाव बहुत कम है। इस तरह के छोटे समूहों में आपसी तालमेल का अभाव रहता है। स्वच्छ और पारदर्शी राजनीति करने के कारण इनके पास साधनों और प्रशिक्षित सैद्धांतिक कार्यकर्ताओं का भी अभाव रहता है। लेकिन सिद्धांतहीनता- मूल्यहीनता और नीति विहीनता से उपजे रिक्त स्थान को भरने का क्षमता इन्हीं में हैं। इसके लिए जरूरी है ऐसे लोकतांत्रिक, नैतिक, समाजवादी- वामपंथी धारा में स्वच्छ और पारदर्शी राजनीति करनेवाले समूहों को निजी अहम से ऊपर उठकर एकजुट होने की। एकजुट होने पर इनके कर्मो और जन संघर्षों के बूत जनता के बीच इनकी विश्वसनीयता निश्चित तौर पर बढेगी और स्थापित राजनीति के बरक्श एक वैकल्पिक राजनीति को दिशा मिल सकती है।

निश्कर्ष के तौर पर हम पाते हैं कि निकट भविष्य में स्थापित राजनीतिक दलों की विश्वसनीयता पूरी तरह खत्म होने पर आनेवाले खाली पने को भरने के लिए देश में छोटे स्तर पर सक्रिय तमाम परिवर्तनवादी ताकतों को एकजुट होकर इससे मुकाबले को कमर कसना होगा। इसमें सभी लोकतांत्रिक वामपंथी धाराओं को भी शामिल करने की जरूरत है। इससे जातिवादी, सिद्धांतविहीन राजनीति के दलदल में फसी जनता को निजात मिलने की उम्मीद बनेगी, तभी देश में एक सक्षम विकल्प को भी तैयार किया जा सकेगा। वर्तमान स्थिति में नीतिगत राजनीति के लिए काफी जगह है और ये परिवर्तनवादी धाराएं मिलकर जनांदोलन चलाती हैं तो देश की राजनीति की दिशा-दशा को अगले कुछ सालों में पलट कर उसे सकारात्मक दिशा में ले जाया जा सकता है।

पिछले अंक का शेष......

सच्चिदाजी के बहाने आधुनिक सभ्यता पर एक विमर्ष

सुनील ने कहा कि हमें इस त्रासद व्यवस्था से निजात पाने के लिए अंतहीन संपत्ति, अंतहीन उपभोग की मान्यता को बदलना पड़ेगा। ये बातें गांधी के विचारों से मेल खाती हैं। उन्होंने गांधी के हिन्द स्वराज को मोटे तौर पर आधुनिक सभ्यता के खिलाफ एक बयान बताया। सुनील के अनुसार, फ्रांसीसी क्रांति का स्वतंत्रता-समानता-बंधुत्व का नारे से ही अब काम नहीं चलनेवाला है, बल्कि अब एनएपीएम का समता-सादगी-स्वाबलंबन का नारा ठीक लगता है।

दूसरे सत्र का विशय रखा गया था – 'समाज, राष्ट्र और राजनीति'। सच्चिदाजी के लेखन के इस पक्ष को रखा– राजकिशोर और अरूण कुमार त्रिपाठी ने। राजकिशोर ने समता और संपन्नता के संयोग को समाजवाद कहे जाने की लोहिया की परिभाषा टिप्पणी करते हुए कहा कि पहले संपन्नता अच्छी लगती थी लेकिन अब धरती की स्थिति को देखकर यह षब्द ठीक नहीं है। अब तो साइज महत्वपूर्ण हो गया लगता है। साइज की समस्या को समझे बिना गुणवत्ता व अन्य समस्याओं को समझा नहीं जा सकता है। समाज षब्द तो पश्चिम की देन है। भारत में समुदाय रहा है। समाज इससे बड़ा होता है। भारतीय लोग समाज के आदी नहीं बल्कि वे समुदाय के आदी हैं। राजकिशोर ने कहा कि संवेदनाएं अलग–अलग होती हैं। अपने लिए अलग और दूसरे या वृहत्तर दायरे के लिए अलग। ईकाई जितनी छोटी होगी, संवेदनाएं उतनी ही गहरी और वास्तविक होगी।

उन्होंने सच्चिदाजी के लेखन में इस साइज को रेखांकित करते हुए कहा कि सच्चिदाजी ने साइज पर जोर दिया है और उनके लेखन में यह साफ है कि बसाहट छोटे दायरे में होनी चाहिए। इसी में मानव का आकार–प्रकार और संवेदना बची रही सकती है। तभी हम चरित्रवान, संवेदनशील और मनुष्य से प्रेम करना सीख सकते हैं। उन्होंने कहा कि समुदायिक जीवन में रहनेवाले कबीलों का इतिहास लाखों वर्षों का है जबकि साम्यवाद या समाजवाद बिल्कुल नया है। यह केवल किताबों तक सीमित है। हम समाज पर जोर देते हैं इसलिए मनुष्य का विकास नहीं हो पाता है। उनके अनुसार मनुष्य इतना बड़ा नहीं हुआ है कि सामाजिक हो सके। वह सामुदायिक हो सकता है क्योंकि वह हर स्तर पर इसी से जुड़ा हुआ है। उन्होंने जाति को एक समुदायिक व्यवस्था के रूप में निरूपित किया और कहा कि लोगों से जातीयता तबतक खत्म नहीं हो सकती, जब तक कि समानता के आधार पर अवसर नहीं मिलेंगे। उन्होंने समुदाय की खूबियों को गिनाते हुए कहा कि अगर समुदाय में खाना बनने लगे तो बड़ी संख्या में स्त्रियां स्वाधीन होंगी और उन्हें दूसरे कामों में अवसर मिलेंगे। उन्होंने राज्य व्यवस्था के ऊपर एक विश्व सरकार की बात कही और बताया कि राज्य आततायी हो जाते हैं। राष्ट्र को उन्होंने एक निकृष्ट संगठन और स्वतंत्रता विरोधी बताया। उन्होंने साइज या आकार को छोटा रखने की जरूरत पर बल देते हुए प्रातिनिधिक प्रणाली को अस्वाभाविक बताया। छोटे प्रशासनिक तंत्र में प्रत्यक्ष लोकतंत्र हो सकता है और यही ठीक है।

अरूण कुमार त्रिपाठी ने कहा कि किशन जी हों या सच्चिदा जी, इन लोगों ने आज के पूंजीवाद के संकट को काफी पहले पहचान लिया था। किशन जी कई साल पहले से ही कह रहे थे कि 08–09 तक वर्तमान पूंजीवाद पर संकट आ जाएगा। उन्होंने सच्चिदाजी की गहरी वैचारिक आस्था और विष्वास का उल्लेख करते हुए कहा कि देष मे 90 के दशक में तीन संकट आए– मंदिर, मंडल और ग्लोबलाइजेशन। इस दौर में दिल्ली से लेकर मुजफ्फरपुर जैसी छोटी जगहों तक विचारकों के पांव डगमगा गए। उस समय भी सच्चिदानन्द सिन्हा और किषन पटनायक अविचलित रहकर दृढता से अपनी बात पर अड़े रहे और हमारे जैसे लोगों को राह दिखाई थीं। उन्होंने कहा कि दिल्ली जैसे समाज में समाज कहकर कोई विमर्श नहीं चलाया जा सकता। ग्लोबजाइजेशन जहां–जहां गया है, वहां समाज, सोसाइटी आदि को खत्म करने का प्रयास चला है।

उन्होंने अमेरिकी चुनाव का उल्लेख करते हुए वैश्विक परिप्रेक्ष्य में कहा कि ओबामा कोई छोटी घटना नहीं है। अमेरिकी नीतियों और पूंजीवाद के कट्टर विरोधी वेनेजुएला के राश्ट्रपति ह्यूगो चावेज, क्यूबा के नेता फिदेल कास्त्रो और ईरान के राष्ट्रपति अहमदीनेजाद ने ओबामा का स्वागत किया है। यह भी अमेरिका नीत पूंजीवाद की स्वीकार्यता पर एक प्रहार ही है। त्रिपाठी ने कहा कि जो समाजवादी विमर्श सच्चिदानन्द सिन्हा आगे बढ़ाते हैं, वह छोटी–मोटी घटना नहीं है। मोटी तनख्वाह लेकर बात करने वाले बहुत मिल जाते हैं।

भारतीय जाति व्यवस्था के संदर्भ में सच्चिदाजी ने होमो हाइरार्कियस थ्योरी की जो प्रतिस्थापना दी है वह लोहिया से पूरी तरह असमहमति है। लोहिया पिछले पांच हजार साल की कमियों के लिए जाति व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराते हैं लेकिन सच्चिदाजी इस तरह से नहीं देखते। उनकी स्थापना है कि मनुस्मृति अंग्रेजों के आने के बाद समाज पर कठोरता से लागू हुआ। इससे पहले इसका कोई खास वजूद नहीं था। त्रिपाठी जाति व्यवस्था के ही संदर्भ में कोएलिशन इन पॉलिटिक्स को भी देखते हैं। उन्होंने कहा कि टेक्नोलॉजी के अपने खतरे हैं। वह पर्यावरण का नुकसान कर रहा है। अब तो ज्यादा खतरनाक टेक्नोपॉली हो गया है।

सुनील ने बहस में हस्तक्षेप करते हुए सांस्कृतिक राष्ट्र की सच्चिदाजी की अवधारणा का समर्थन किया। डॉ. प्रेम सिंह ने इसपर हस्तक्षेप कर कहा कि भारतीय सांस्कृतिक राश्ट्र समस्याविहीन नहीं था। एक बड़ा समूह – दलित, आदिवासी, शुद्र और स्त्रियां इसके दायरे से बाहर थीं।

तीसरे सत्र 'संस्कृति, सभ्यता और कला' पर सच्चिदाजी के लेखन को निरूपित करते हुए कवि गिरिधर राठी ने सच्चिदाजी को लुकातते, वासुदेव शरण अग्रवाल और मोतीचन्द जैसे समग्र ज्ञान के पुरोधाओं की धारा का विद्वान बताया। राठीजी ने कहा कि इस समय हिंसा, अराजकतावाद, सर्वाधिकारवाद आदि कुछ देशों के संदर्भ में दुनिया पर हावी है। ऐसे समय में सच्चिदाजी द्वारा फ्रेंच नाटककार अल्बेयर कामू के नाटक 'लेस जस्टेस' का अनुवाद किया जाना मौजूं है। राठीजी ने कहा कि उन्होंने सच्चिदाजी से सीखा है कि चीजों को काट–काटकर, छांट–छांटकर नहीं देखना चाहिए। क्योंकि ज्ञान समग्रता में ही होता है, टुकड़ों में नहीं। 50–60 साल के बौद्धिक ज्ञान को छोड़ दें तो उससे पहले का ज्ञान विशेषज्ञता में या कटे हुए रूप में विद्यमान नहीं था, बल्कि ज्ञान अपनी विराटता में दिखाई देता था। उन्होंने सच्चिदाजी के लेखन के आधार पर कहा कि वह एक तरफ तथ्यों का पूरा ध्यान रखते हैं और उसके पूर्वापर पक्षों की समीक्षा कर पहले पूरी परीक्षा करते हैं। उन्होने कहा कि दुनिया मे कोई भी वाद संपूर्ण नहीं है। कार्ल मार्क्स का पूरा दर्शन यूरोपीय ब्यौरे पर आधारित था तो फ्रायड का दर्शन यहूदी समाज का दर्पण मात्र था। आज अर्थव्यवस्था को भी लें तो इसमें बहुत सारे आय–व्यय षामिल नहीं किए जाते। मसलन स्मगलिंग, अपराध आदि से होनेवाली आय। इसी तरह समाजषास्त्र, राजनीति शास्त्र में गुंडों, चोरों, बदमाशों के नीचे रहनेवाले समाज और उसकी मानसिकता का विवेचन नहीं मिलता है।

अंत में अपने अति ही संक्षिप्त वक्तव्य में सच्चिदाजी ने कहा कि उनका जीवन क्रोलिंग स्टोन जैसा रहा है। वह हजारीबाग के कोयला खदानों में मजदूरी से लेकर मणिका गांव तक लुढकता रहा है। उन्होंने अपनी सृजनशीलता के बारे में इतना कहा कि वह परिस्थितियों के दबाव में लिखते रहे हैं।

पूरे दिन के सिम्पोजियम में वक्ताओं के साथ बड़ी संख्या में श्रोताओं ने भी विचार-विमर्ष में हिस्सा लिया और संबंधित मुद्दों पर अपनी बेबाक टिप्पणियां रखीं।

सिम्पोजियम के अंत में उपस्थित लोगों का स्वागत प्रो. उदय शंकर जी ने किया। उन्होंने पिछले पचास सालों से सच्चिदाजी के साथ के सहकर्म और विचारों के बारे में संस्मरण सुनाए।

किसानी के साथ विश्वासघात

डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, मध्य प्रदेश

समानता के आधार पर विकास पर राष्ट्रीय संकल्प संविधान में अभी भी प्रतिष्ठित है। अंतिम व्यक्ति की नजर से हर काम को देखने-परखने के गाँधी जी के ताबीज का जिक्र शासकों की जबान पर है। 'सात लाख गांव गणराज्यों के महासंघ' के रूप में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के सपने को साकार करने की बात भी कभी कभार होती रहती है। परन्तु फिर भी व्यवहार में हमारे शासक वर्ग ने समानता के आधार पर विकास की राह को बेहिचक छोड़कर साम्राज्चादी-पूँजीवादी विकास की राह अपना ली। संविधानिक मूल्यों को कूड़ेदान में फेंकते हुये गैर बराबरी को विकास की अनिवार्य शर्त मान लिया। इसी के चलते आजादी के बाद साम्राज्यवादी कानून का शिकंजा शिथिल होने की बजाय और भी कसता गया। सत्ता की अंधी दौड़ में लोकतांत्रिक व्यवस्था तार-तार होती गयी। राज्य-समर्थित पूँजीवादी दौर में कृषि-प्रधान भारत के विकास की लगाम औद्योगिक क्षेत्र को थमा दी गयी। अब जगतीकरण के बैनर तले किसी भी कीमत पर विकास दर बढ़ाने का सेहरा निजी हाथों में है। नतीजतन देश यशस्वी है, लोग बेहाल हैं। दिशा परिवर्तन के बारे में लोगों की बीच खुलकर कहीं कोई चर्चा तक नहीं हुई।

खेती-किसानों के लिये हमारे श्रम-बहुल देश में पूँजीमूलक 'हरित क्रांति' की राह अपनायी गयी जिसमें निजी लाभ को विकास की प्रेरक शक्ति मान लिया। उधर इस बात को पूरी तरह भुला दिया गया कि अन्य बातें बराबर होने पर जितना छोटा खेत होता है प्रति एकड़ उत्पादकता उतनी अधिक होती है साम्राज्यवादी ताकतों के इशारों पर संचालित इसी धोखाधड़ी की नीति ने देश में 'हरिततर क्रांति' और विश्व में भारत के महाशक्ति के रूप में स्थापित होने की संभावना खत्म कर दी। सबसे अक्षम्य बात तो यह हुयी कि आत्मनिर्भर किसान को पूरी तरह परावलम्बी बना दिया गया। विश्व बैंक द्वारा प्रेरित आधुनिक कत्लखानों की स्थापना, गोमांस के निर्यात के लिये बाजार में किसान की पहुँच से बाहर ऊँचे दामों पर पशुधन की खरीद और रियायती दामों पर मशीनों का प्रदाय इसी साजिश का हिस्सा है।

हमारी अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों में, जैसे खाद्य तेल, दुग्ध-प्रकल्प, खुदरा व्यापार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का नियंत्रण होता जा रहा है। नियंत्रित कृषि मंडियों को ध्वस्त कर स्वच्छंद खुले बाजार के लिये रास्ता साथ किया जा रहा है। देशी बीजों की जगह कंपनी के वंश-परिवर्तित बीजों का चलन और पंजीकृत बीजों के उपयोग का कठोर कानून किसान की दासता की अंतिम कड़ी होंगे। इन्हीं कुनीतियों के चलते, खासतौर से हरित क्रांति के इलाकों में भारी कर्ज के जाल में फंसे किसान के लिये आत्महत्या की मजबूरी है। अब उसकी छाया अन्य इलाकों में भी तेजी से पसर रही है। दूसरी ओर चंद सफल लोगों ने खासतौर से शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में जहाँ अटाटूट धन का जमाव हो रहा है, अपनी अलग दुनिया बना ली है। उधर 'असफलों' के कूड़े-करकट के भारी ढेर जमा हो रहे हैं। ऐसे में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी की आज गांवों में बसने वाला भारत टूट रहा है। उसकी जगह दो देश बनते जा रहे हैं - सर्वसाधन - सम्पन्न इण्डिया' और अपनी नैसर्गिक विरासत से च्युत और नितांत साधनहीन शोषित का 'हिन्दुस्तनवा'।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत की सकल घरेलू आय में खेती-किसानी का हिस्सा सन् 1947 से 67 प्रतिशत था। यह सन् 2008 में घटकर सिर्फ 17 फीसदी रह गया है। मजा यह है कि इस बीच खेती किसानी का उत्पादन लगभग 4 गुणा हो गया। 4 गुणे उत्पादन का तुलात्मक मोल एक-चौथाई और वास्तविक पैमाने पर एक बटे सोलह रह गया। इसी दौर में भारी मशीनीकरण के चलते मानवीय श्रम का प्रति एकड़ उपयोग घटकर एक-तिहाई रह गया है। 'तकनीकी नियतिवाद' के साये में, जहाँ मशीन मानव की सहायक न होकर उसकी प्रतिद्वंद्वी हो गयी है, यह प्रक्रिया और भी तेज होती जा रही है। मानव हतिहास में पहली बार स्वयं मानव 'फालतू होता रहा है। इन विसंगतियों पर चिन्ता की बजाये सन् 2020 के सरकारी दृष्टि पत्र के अनुसार विकास की इस लहर में सकल राष्ट्रीय आय में खेती-किसानी का हिस्सा 6 फीसदी रह जायेगा। उधर उपरले 10 फीसदी लोगों का हिस्सा सन् 2008 में 60 फीसदी हो चुका है, जो 2020 तक और भी बढ़ कर 70 फीसदी हो सकता है। विकास के लाभों के इस अन्यायी वितरण और श्रमिकों की घटती हिस्सेदारी पर किसी और से कोई चिन्ता के आसार नहीं हैं। सभी पक्ष उसे विकास का प्रतीक और एक दैवी-प्रक्रिया तक का रूप मानते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर कोई भी एक सच्चाई का जिक्र तक नहीं करता कि राष्ट्र की कुल आय में खेती-किसानी का हिस्सा कम से कमतर होते जाना सरकारी नीतियों के कारण है।

साफ निष्कर्ष है कि कसान गरीब हैं नहीं उसे गरीब बनाया गया है। सन् 2000 की राष्ट्रीय कृषि नीति में 'जो जोते उसकी जमीन' के राष्ट्रीय संकल्प को कूड़ेदान में फेंककर पैसे वाला खेती करेगा का उसूल स्वीकार कर लिया गया। इस तरह 'निगमित खेती' का रास्ता साफ हो गया। राज्य और केन्द्र के

भूमि सीमा और उसकी मालिकी के कानूनों को बदला जा रहा है। जीवन का आधार धरती अब माता नहीं , खुले बाजार में बिक्री की वस्तु हो गयी है। बाहुबलियों और स्वयं राज्य व्यवस्था की सहायता से जमीन पर जागतिक निगमों का कब्जा होना अब समय की बात है। खेती 'पापी पेट की आग बुझाने' की बजाये 'भरपेट वालों की हविश' पूरी करने का आधार बनती जा रही है। इसी लहर में गोरे साहब के घोड़े की तरह धनपतियों की कारें 'चराई' के लिये किसानों के खेतों में घुसती जा रही हैं। बायो डीजल के लिये खेती में मक्के की फसल और समाज की साझी भमि, जिसे अँग्रेजों ने 'ऊसर और वन क्षेत्र' घोषित कर दिया था, पर जटरोपा की पौध लगायी जा रही हे। इसी क्रम में कहीं उद्योग, कहीं पर्यावरण और कहीं उन्नत प्रबंधन के नाम पर आम लोगों की जीविका का आधार जल, जंगल, जमीन जैसे नैसर्गिक संसाधनों पर भी पैसे वालों का कब्जा होता जा रहा है।

आज सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के हर पहलू में पूँजीवादी सोच की अदृश्य पैठ होती जा रही है। 'दुतल्ले पर विकास' के लाभ के रिसन के रूप में अवाम की हिस्सेदारी की बात 'रासी घोड़ों को इस उम्मीद के साथ दाना खिलाने जैसा है, मानो जमीन पर गिरने वाली उनकी लीद में से चिड़ियों की कुछ दाने मिल जायेंगे।' इस हालत में उसके कारगर प्रतिकार की बात तो दरू, उससे हल्के-फुल्के मत-मतान्तर तक की संभावना नहीं बच रही है। हमारे प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री पूँजीवादी खेती के बहुरंगी पंखों वाले नये युग का गुणगान कर रहे हैं। इस महिम में असली खेती किसानी रूपी चिड़िया के अवसान और उससे बेदखल किसान और मजदूर कहां जायेंगे, इसकी किसी को कोई परवाह नहीं है। इस नीति के चलते किसान का 'नाकारा' बेटा दारू की देशव्यापी बाढ़ में डूबकी लगाकर किसी नाली के किनारे, करनी के फल पर सहानुभूति जताने वालों की भीड़ के बीच पड़ा मिलेगा। और उसकी 'काम की बेटी' पाँच सितारा पर्यटन के जागतिक उद्योग में, जिसमें 'कुमारियों के देश' के रूप में अब भारत की ख्याति है, देह-व्यवसाय उसे उसके बुढ़ापे की लाठी बनेगी। इस नियति के खिलाफ खुल विद्रोह के अलावा और कोई राह नहीं है।

विकास के लिये पूँजी:
किसानी का छद्म शोषण

आजादी के बाद भारत औद्योगिक और शहरी विकास में तेजी से आगे बढ़ा है। परन्तु उसके साथ-साथ, ऊपर दिये आंकड़ों के अनुसार, ग्रामीण भारत गरीबी के भारी दलदल में फंसता गया है। इस औद्योगिक और शहरी विकास के लिये पूँजी उस समय के एक मात्र उत्पादक क्षेत्र, यानी खेती-किसानी से ही उगाही की जा सकती थी और वहीं से की गयी। परन्तु इस मामले में हमारे शासक वर्ग ने धोखाधड़ी की नीति अपनायी। पहले तो उन्होंने इस कड़वी सच्चाई को ही छिपा लिया। यही नहीं, 'हमला प्रतिरक्षा का सबसे कारगर उपाय है' की रणनीति के अनुसान उसने ग्रामीण भारत में बारे में यह दुष्प्रचार भी किया कि 'किसान तो सरकारी जमाई है।' उसके पास वोट की अमोघ ताकत है, इसलिये उसे सभी कुछ मुफ्त चाहिये।

आजाद भार में किसानी से अनकही धोखाधड़ी भरी वसूली सबसे जघन्य अपराध है। यह ठीक है कि पूँजी खेती-किसानी से ही उगाही जा सकती थी। परन्तु सवाल यह है कि उस योगदान का श्रेय मिले की बजाये, किसानी के हिस्से में जलालत ही जलालत क्यों?इंग्लैण्डके औद्योगिक विकास के लिये भी पूँजी भारत के किसानों से ही भारी नकदी लगान लगाकर वसूली गयी थी। परन्तु आजादी के बाद किसानों से सीधी वसूली असंभव थी, उसके खिलाफ 'लोकतंत्र असहमति का विद्रोह' हो जाता। इसलिये शासकों ने धोखाधड़ी भरा रास्ता अपनाया। उन्होंने भीतरघात कर किसानी के मेहनत के मूल्य में ही सेंध मार दी। इस बावत उनके बीच चुप्पी साधे रहने की आम सहमति है। इसीलिये उस पर आज तक कहीं कोई चर्चा नहीं है।

इसी का नतीजा है कि एक ओर खेती-किसानी में मेहनत और औसतन मोल 30-50 रुपये रोज है तो दूसरी ओर सरकार का सबसे साधारण कर्मचारी भी 400 रुपया रोज (छठवें वेतन आयोग के बाद) का हकदार है। विधायक, सांसद या कलैक्टर की हकदारी 2-3 हजार रुपये रोज! डॉक्टर, वकील, व्यापारी, उद्योगपति कितने लाख कमा लें उसका कोई हिसाब नहीं। अंबानी का औसत जुगाड़ 1000 रुपये प्रति सैकंड है। आज न्यूनतम और अधिकतम हकदारी के बीच 1 और 3 का आदर्श; या 1 और 10 का घोषित वांछित अंतर नहीं, डंके की चोट पर निर्लज्ज असमानता का प्रतीक एक और एक लाख के ऊपर है। धनापतियों की करामाती जुगाड़ की भर्तस्ना नहीं, उनके विभत्स कृत्यों का यशगान हो रहा हैं।

स्वाभिमानी किसान, आत्महीनता का शिकार

धोखा यहीं नहीं खत्म होता है। दुनिया में सबसे कुशल काम खेती-किसानी को कृषिप्रधान भारत में अकुशल काम का दर्जा दिया गया जिसका कहीं कोई प्रतिवाद नहीं। मजा यह कि माहौल ऐसा बना दिया गया है कि खुद किसान अपनी बेहारी की बात करने में यह बैठता है 'क्या करें हम तो अनपढ़ गँवार ठहरे, बैलों के संग बैल हैं।' 'उत्तम खेती-मध्यम बीज बनिज, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान' वाली सांस्कृतिक चेतना के धनी भारत में अन्यायी विकास को शोषितों के विद्रोह से बचाने के लिये प्रयोजित आत्महीनता का जाल रचा गया। वह किसानी के खात्मे की गहरी साजिश का हिस्सा है। जिस किसान ने भगवान के अलावा कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, खेती को घाटे का सौदा बनाकर उस स्वाभिमानी नादान को हुक्मरानों के सामने भीख के लिये हाथ फैलाने के लिये मजबूर कर दिया। शिक्षा में श्रम के प्रति हिकारत और किसी भी तरह के जुगाड़ से तुरंत सिद्धि की ललक के माहौल के चाकरी उत्तर और खेती निकृष्ट होती गयी है। इसलिये वह त्याज्य है और तो और, कृष्ण-सुदामा-संदीपनि की गुरुकुल परंपरा वाले देश के ग्रामीण स्कूलों में मध्यान्ह भोजन के नाम पर हाथ में कटोरा लिये लाईन में खड़े होने का प्रहसन नई पीढ़ी में शुरू से ही आत्महीनता के बीच बोने जैसा है, जिससे वे जिन्दगी में कभी शासक वर्ग से नजरें न मिला सकें।

साभार - नीतिमार्ग

वामपंथी पुन: फिनिक्स के रूप में उभरेगा

जी. देवराजन

15वीं लोकसभा चुनावों के परिणाम वास्तव में सभी वामदलों और क्षेत्रीय दलों के यि एक आँख खोलने वाली है। निश्चित रूप से हर कोई अपने उद्देश्यों और विषय वस्तु का राज्य की परिस्थितियों के अनुसार पोस्टमार्टम करेगा, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर कोई यह कहे कि चुनाव में हार या जीत तो प्राकृतिक है, तो यह एक थोड़ा बहका हुआ वक्तव्य होगा। गंभीरता से चुनाव लड़ने वाली कोई भी पार्टी अपनी इस हार के पश्चात् शुतुरमुर्ग की स्थिति को कदापि नहीं अपनायेगी।

चुनाव के नतीजें मिलने के बाद तुरंत वामदलों ने आंतरिक और बाहरी आत्मनिरीक्षण करना और क्या गलत और क्या सही हुआ के विस्तार से अध्ययन करने में लग गया। राज्यो द्वारा बूथ लेवल तक का विश्लेषण सुनिश्चित रूप से समयानुसार गलतियों को सुधार करने में सक्षम होगा। वाम दलों की मुख्य चार धाराओं में प्राथमिक चुनाव विश्लेषण पर कार्य पहले ही पूरा कर लिया गया है। ऐसा करने से पहले हम चुनावी नतीजों पर समान्य विश्लेषण करेंगे।

इस चुनाव से जो तथ्य उभरकर सामने आयी है कि भारत भर में जनता का बड़ा भाग कांग्रेस (आई) के साथ नहीं है। कांग्रेस (आई) ने उड़ीसा, आसाम, झारखण्ड, गुजरात, छत्तीसगढ़ और कनार्टक में कई सीटें भी गवांई तथा वोट प्रतिशतता भी कम की है। लेकिन इसी समय में उन्होंने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, केरल और उत्तराखण्ड में एक बड़ी बढ़त हासिल की है। आंध्र प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली में कांग्रेस (आई) ने अपनी बढ़त बनाये रखी। पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में उसकी स्थिति यथा स्थिति है। इससे संपूर्ण भारत का रूझान पता चलता है। वाम दलों के दबाव के कारण संप्रग सरकार ने जो जनहित योजनायें लागू की थी – नरेगा, सूचना का अधिकार (आर.टी.आई.), आदिवासियों का अधिकार, कृषि ऋण छूट – आदि को सरकार आर्थिक दायित्वों की बात करके लागू करने के हक में नहीं थी। किन्तु चुनाव में कांग्रेस (आई) इसे भुनाने में सफल रही।

उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि कांग्रेस (आई) को इस चुनाव में 28.52 प्रतिशत वोट मिले जो कि 2004 मिले 26.53 प्रतिशत से से 2 प्रतिशत अधिक है। लेकिन विपक्षी पार्टी भाजपा ने अपने वोट में से 3.33 प्रतिशत वोट खो दिया और उसे कुल 18.83 प्रतिशत वोट ही प्राप्त हुआ। जबकि 2004 में उनके पास 22.16 प्रतिशत वोट प्राप्त हुये थे। अर्थात् मतलब और है कि भाजपा द्वारा खोया सारा वोट कांग्रेस (आई) को नहीं मिला। इसका एक मतलब और यह भी है कि कांग्रेस (आई) और भाजपा को मिलाकर कुल 47.35 प्रतिशत वोट ही प्राप्त हुये। इसका अर्थ यह है कि गैर-भाजपा और गैर कांग्रेस दलों और अन्य उम्मीदवारों को 52.65 प्रतिशत वोट प्राप्त हुआ है। इस चुनाव में तीसरे मोर्चे ने मिलकर 21 प्रतिशत वोट प्राप्त किया है।

आंकड़ों का प्रतिशत कुछ भी हो कांग्रेस (आई) ने अपनी सीटों की संख्या बढ़ाई है। 2004 में 145 सीटों की तुलना में 2009 में उसने 206 वोट प्राप्त किया है अर्थात् 22 सीटों को फायदा हुआ। जबकि भाजपा को 22 सीटों का घाटा हुआ है, अर्थात वह 138 से 116 पर आ गया। 1989 में भाजपा की 199 सीटें थी और 2004 में 138 थी और 2009 में और घटकर 116 रह गयी। चुनाव परिणाम संकेत करता है कि भाजपा का जहाज डूब रहा है और सीटों की संख्या में तेजी से गिरावट आ रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि भाजपा के पास सांप्रदायिक मुद्दों को छोड़कर कोई भी मुद्दा नहीं है जिससे भाजपा को जनता वोट करें। ध्रुवीकरण, सार्वजनिक सम्पत्तियों का विनिवेश, श्रम अधिकारों में कटौती आदी में भाजपा हमेशा कांग्रेस के साथ खड़ी रही। इसी प्रकार अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरोध में भाजपा और कांग्रेस (आई) का एक ही नजरिया है। इस प्रकार कांग्रेस (आई) और भाजपा में कोई अन्तर नहीं है। पूरे चुनाव प्रचार के दौरान मुद्दा विहीन बातों पर जोर दिया जैसे मजबूत प्रधानमंत्री, कमजोर प्रधानमंत्री, संप्रग के टुकड़े, कांग्रेस (आई) में गुटबाजी, राम मन्दिर निर्माण का मुद्दा आदि। इन सबके साथ-साथ बरूण गाँधी का साम्प्रदायिक और घृणात्मक भाषण, भाजपा के नये ब्राण्ड के रूप में नरेन्द्र मोदी को लालकृष्ण आडवाणी के बाद प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार कहना, आदि ये सभी भाजपा कार्य किये।

सभी गैर-कांग्रेस(आई) और गैर-भाजपा पार्टियों के साथ मिलकर तीसरे मोर्चे का सम्मिश्रण सही कदम था। इसके लिये 10 पार्टियाँ एक मंच पर आयी, ताकि चुनाव बाद सरकार का गठन किया जा सके। लेकिन वामदल तथा मोर्चे के अन्य दल इसके संयोजन के लिये एक उचित संरचना प्रदान करने में विफल रहे। मोर्चे के सभी घटक दल विकल्प के लिये एक अनुशासनात्मक राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रदान करने में विफल रहा है। मोर्चे के नेताओं ने कोई भी राष्ट्रव्यापी संयुक्त अभियान नहीं किया। इन सभी कमियों के कारण तीसरे मोर्चे के व्यवहार पर लोगों में भ्रम पैदा हो गया। कांग्रेस (आई) और भाजपा के मिडिया में निराधार और गलत बयानी से तीसरे मोर्चे को काफी नुकसान उठाना पड़ा।

वामपंथियों को इस चुनाव में एक गहरा धक्का लगा। जिसकी 2004 में 60 सीटें की तुलना में 2009 के चुनाव कुल 24 सीटें ही रह गयी और 36 सीटों का नुकसान उठाना पड़ा। वाम दलों को पश्चिम बंगाल में 20 सीटों का नुकसान हुआ तथा केरल में 15 सीटों का। इसके अलावा राष्ट्रीय मुद्दों के अलावा राज्य स्तरीय कारकों ने भी इस हार में मुख्य भूमिका निभाई।

केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट की पाटिर्यों के बीच का विरोध वामदल की हार का मुख्य कारण बनी। केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट जनता के

बीच सरकार की कल्याणकारी योजनाओं और कार्यों का प्रचार करने में असफल रहीं। एलडीएफ के सहयोगियों में ठीक चुनाव से पहले विचारों के मतभेद और सीटों के बंटवारें को लेकर तनातनी ने यह साबित किया कि यूडीएफ और एलडीएफ में कोई अन्तर नहीं हैं। केरल में एलडीएफ और यूडीएफ के चुनाव के बीच होता है तथा एक दूसरे एक बाद दूसरे के लिये जाना जाता है लेकिन इस परिवर्तन का पैमाना पर मतदाता वरीयता से बाहर चला गया। एलडीएफ को इसे गंभीरता से जाँच करनी चाहिये।

पश्चिम बंगाल के चुनाव परिणाम लोकप्रिय वाम मोर्चे के खिलाफ दिखाता है। पश्चिम बंगाल में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण के मामले में काफी भ्रम पैदा हो गया था। इसके अलावा उद्धत व्यवहार और नौकरशाही पर अत्यधिक निर्भरता वाम मोर्चे की हार का मुख्य कारण रही। नन्दीग्राम की दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने वाम दलों और वाम सरकार की छवि को भी काफी नुकसान पहुँचाया। वाममोर्चे को समर्थन करने वाले कभी भी इतनी बड़ी पुलिस कार्यवाही की उम्मीद वाममोर्चे की सरकार में नहीं कर सकते थे। जिसमें तृणमुल कांग्रेस, कांग्रेस, माओवादीयों, अलगाववादियों ने वाम विरोधी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों के साथ मिलकर झूठे और निदंनीय प्रचार किया, जिसके कारण वाम विरोधी ताकतों को जीत हासिल हुयी। जो वामदल हमेशा लोगों भूमि पर उनके साथ कान लगाये रखता था उनके मन की बात पता लगाने में असफल रहा। इससे पहले मतदान बूथों से रिपोर्ट लगभग ठीक प्राप्त होते थे, लेकिन इस बार बिल्कुल गलत आंकड़े प्राप्त हुये। ऐसा प्रतीत होता है कि नेताओं और कैडरों तथा कैडर और जनता के बीच के दरम्यान एक बड़ा सा अन्दर पैदा हो गया है। एक और बड़ा मुद्दा है कि 32 साल के लगातार शासन के गुरूर से एक बड़े वर्ग में विभिन्न स्तर पर असंवेदनशीलता उत्पन्न हो गयी थी। पश्चिम बंगाल में इन खामियों को दूर करने और अपनी विरासत को वापस लाने के लिये गहन विचार करना होगा।

वामदलों की हार अस्थायी है। जो लोग वाम दलों की हार का जश्न मना रहे हैं निश्चित तौर पर वे पछतायेंगे। औद्योगिक घराने, एकाधिकार पूँजीपति, साम्राज्यवादी एजेंट, स्टॉक मार्केट के बुल्स और बियर आदि असूरी लोग वाम दलों की हार देखकर काफी खुश है। लेकिन वे वामदलों के इतिहास से अनभिज्ञ है जो हमेशा ही विपरीत धारा के खिलाफ भी तैरने की कोशिश करता है। वामदल हमेशा ही कामगारों के लिये कार्य करता रहा है। यह गरीबों, दलितों, मेहनतकश जनता आदि और अपने मातृभूमि की रक्षा और अखण्डता के लिये काम करता रहेगा। अत: वामपंथी फिनिक्स के रूप में उभरेगा।

त्रिपुरा में चुनाव प्रचार समाप्त

त्रिपुरा में 28 मई 2009 को टाउन बरदोवली विधान सभा सीट पर उप-चुनाव होगा। साथी श्यामल राय, महासचिव अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक, त्रिपुरा राज्य कमिटी ने वामदल समर्थित अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक के प्रत्याशी के रूप में नामांकन किया है।

वामदल इस क्षेत्र में जीत के लिये पूरी मेहनत से कार्य कर रहे हैं। सीपीएम, सीपीआई, आरएसपी और फारवर्ड ब्लॉक के राज्य नेता चुनावों सभाओं में भाग ले रहे हैं और सभाओं को सम्बोधित कर रहे हैं। टाउन बरदोवली एक शहरी क्षेत्र है, जो राजधानी शहर अगरतला में स्थित हैं।

साथी देवब्रत बिश्वास, महासचिव, साथी नरेन दे, सचिव अखिल हिन्द फारवर्ड ब्लॉक ने भी टाउन बरदोवली विधानसभा में जन सभाओं को सम्बोधित किया।

प्रेस विज्ञप्ति

वाम एक जिम्मेदार विपक्ष की भूमिका निभायेगा

17 मई 2009 को सीपीएम, सीपीआई, फारवर्ड ब्लॉक और आरएसपी वामदलों के नेताओं की बैठक नई दिल्ली में हुई और निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया:

वाम पार्टियाँ संसद में एक जिम्मेदार विपक्ष की भूमिका निभायेगा। वामदल गैर-कांग्रेस और गैर-भाजपा पार्टियों के साथ अपना तालमेल बनाये रखेगा।

लोकसभा चुनाव के संदर्भ में यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक पार्टी व्यक्तिगत रूप से हार का विश्लेषण करेगी। इसके अलावा, उन तथ्यों को ढूंढेगी की किस प्रकार इस कमी को थोड़े समय में दूर किया जा सके।

प्रकाश करात, सीताराम येचुरी, एस.रामाचन्द्रन पिल्लई (सीपीएम), ए.बी. वर्धन, डी.राजा (सीपीआई), देवब्रत बिश्वास, जी. देवराजन (फारवर्ड ब्लॉक) और टी. जे. चन्द्रचूणन (आरएसपी) मीटिंग में उपस्थित थे।

आर्थिक सुधारों के लिये उन्मुक्त अवसर

भारत सरकार वर्ष 1990 के आरंभिक वर्षों से जब तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह और प्रधानमंत्री नरसिंहा राव थे देश में आर्थिक सुधारों के नाम पर उन्मुक्त अवरोध विहीन होकर कार्य करने को बेचैन थे। तब से सुधारों को कांग्रेस ने कई चरणों में लागु किया जिसे भाजपा नेतृत्व प्राप्त राजद ने भी वर्ष 1999–20004 में चालू रखा और क्रियान्वित किया। परन्तु कारपोरेट जगत के मुनाफे पर आधारित कार्यक्रमों को जनता के विरोधात्मक तेवर का अक्सर सामना करना पड़ता रहा है और कांग्रेस नेतृत्व प्राप्त संप्रग में अधिक संख्या में वाम नेताओं की उपस्थिति भी उनके सुधारों में बाधक थी। पन्द्रहवीं लोकसभा के चयन में कांग्रेस की सीटें बढ़ी है, वहीं वाम नेताओं की उपस्थिति घटी है और इस तरह कांग्रेस – कारपोरेट गठजोड़ को लम्बे समय से वांछित मनमाने आर्थिक सुधारों को लागू करने का प्रचुर अवसर मिल गया है। इस लोकसभा के नतीजे का सबसे पहला प्रभाव शेयर मार्केट में देखा गया। कांग्रेस के सत्ता में वापसी होने का समाचार पाते ही शेयर सूचकांक 18 मई 2009 को सिर्फ दो मिनट में अप्रत्याशित 2110.79 बिन्दु को छू गया। भारत के स्टॉक मार्केट के इतिहास में निवेशकों की ऐसी अंधाधुँध दौड़ पहली बार देखी गयी और इस तरह कोई भी अनुमान लगा सकता है कि आने वाले दिनों में शेयर बाजार कैसे कार्य करेगा।

शेयर सूचकांक के उछाल व्यापारियों और औद्योगिक घरानों की ऊँची उम्मीदों से जोड़ा जा सकता हैं जिन्हें कांग्रेस के सत्तासीन होने के बाद सुधारों से फायदा होना है। वास्तव में पिछली संप्रग सरकार ने कई उदारवादी कदम बैंकिंग, पेंशन, खुदरा क्षेत्र और ढीले श्रम कानून के मामले में उठाये थे इनमें से कई मामलों में वाम दलों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और यह विरोध सड़कों से होता हुआ संसद तक देखा गया। अब तो 15वीं लोकसभा में कांग्रेस अवरोध विहीन हो चुकी है और अनेक सुधार जो लम्बित थे उन्हें शीघ्र लागू करेगी। यहाँ तक की कारपोरेट जगत बहुत खुश है कि सुधारों की एक नयी आँधी आने को तैयार है। संप्रग सरकार के पूर्व में कहे – एकीकृत विकास वाक्य के अनुसार, हमें अचम्भा है कि यह सुधार किस रूप में आम आदमी को लाभ पहुँचायेंगे।

पेंशन, बीमा, विनिवेश, श्रम, बैंकिंग, खुदरा, कर सम्बन्धी माप, वस्तु एवं सेवाकर के क्षेत्र आदि में तुरन्त अपेक्षित सुधार जो होने है। वामदलों का संसद में कोई दबाव नहीं है इसलिये पेंशन फण्ड, रेगुलेटरी एण्ड डेवलमेंट ऑथोरिटी बिल (विनिमायक विकास प्राधिकरण बिल) आसानी से पास हो जायेगा।

बीमा क्षेत्र के सम्बन्ध में एक बिल विगत सरकार के अन्तिम दिनों में प्रस्तुत किया गया था। जिसके अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की बढ़ोतरी सुधारों के क्रम में आगे आयेगा जो 26 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत करने के सम्बन्ध में था। जिसे अब हरी झण्डी मिल जायेगी।

विनिवेश दर और अधिक बढ़ेगी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों विशेषकर मुनाफा उपक्रम इस विनिवेश की भेंट चढ़ेंगे और इस तरह नौरत्न कहे जायेंगे उद्योग भी इस विनिवेश के जाल से नहीं बच पायेंगे।

यह बहुत ही चिन्ता का विषय है कि कारपोरेट घरानों के हितों में सोच कर श्रम नियमों को उदार बनाया जायेगा। कारपोरेट हित व्यवस्था के लिये श्रम कानूनों उनकी स्वेच्छानुसार ढीला कर दिया जायेगा। परन्तु इससे श्रमिकों के बीच में बहुत भारी असंतोष उभरेगा।

निजी पूँजी बैंकिंग क्षेत्र में आने वाले दिनों में और अधिक भूमिका अदा करेगी। भारत के बैंकिंग क्षेत्र में इस संदर्भ में बैंकिंग रेगुलेशन एक्ट में बदलाव लाकर निजी पूँजिपतियों को आशन्नवित मुनाफा पहुँचायेगी।

खुदरा व्यापार के क्षेत्र में देशी और विदेशी बड़े पूँजिपतियों के प्रवेश देश के लाखों खुदरा व्यापारियों के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। इन व्यापारियों को आसान विदेशी निवेश कानूनों के जरिये प्रवेश दिया जायेगा।

अन्य आर्थिक कदम विश्व में आयी आर्थिक मंदी के दौर में मूलतः बड़े व्यापारियों और कारपोरेट घरानों के लोगों को फायदा पहुँचाने के लिये उठाये जायेंगे और आम उपभोक्ता के लाभ के लिये इन आर्थिक प्रयासों में कोई स्थान नहीं होगा। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहेगी। उत्पाद शुल्क और अन्य ऐसे कदम पूर्ववर्ती सरकार ने उठाकर अपने आर्थिक प्रयासों की दिशा बता दी है।

व्यापक माल और सेवा कर (जीएसटी) आने वाले दो वर्षों मूर्त रूप लेगा जिस तरह अप्रत्यक्ष कर सुधार मुख्य रूप से सामने आयेगा। जबकि यह दोनों सुधार आम उपभोक्ता को बुरी तरह प्रभावित करेंगे।

15वीं लोकसभा में कांग्रेस और अधिक शक्तिशाली होकर आयी है और इस तरह ऊपर कहे गये आर्थिक सुधारों को कुछ अन्य सुधारों के साथ जारी करेंगे। और हम आम आदमी के सामने वाली मुसीबतों की कल्पना कर चिन्तित है।

राजनैतिक वक्तव्य : डॉ. बरूण मुखर्जी

नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर के लिये भारत पर अमेरिकी दबाव

भारत ने अमेरिका के साथ एक नाभिकीय समझौते पर हस्ताक्षर किये है इस समझौते को भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश एक–दूसरे को अपना सर्वश्रेष्ठ मित्र कहते रहे हैं, ने तैयार किया था अब बदली हुयी अमेरिकी सत्ता में राष्ट्रीय बाराक ओबामा के साथ परिस्थितियाँ बदल रही है और भारत की नाभिकीय क्षमता, हथियार, दक्षिण एशिया में अस्थिरता पैदा करने के कारण के रूप में अमेरिका देख रहा है। भारत–पाक सम्बन्ध और अफगानिस्तान में युद्ध जैसी स्थिति में ओबामा सरकार की आँखों में भारत विशेष शक्ति के रूप में विकसित हो, उन्हें सुहाता नहीं नजर आ रहा है। इसलिये नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करवाने के लिये अमेरिकी दबाव बढ़ रहा है। हाल के अमेरिकी के सहायक राज्य सचिव रोजे गोटेमोलर ने संयुक्त राष्ट्र संघ में इस विषय को उठाया और भारत, पाकिस्तान, इजरायल, उत्तरी कोरिया को इस संधि पर हस्ताक्षर करने के लिये कहा। इस तरह आर्थिक हथियारों के विश्व स्तरीय घुसपैठ को रोकने के सम्बन्ध इस संधि का उल्लेख किया। परन्तु भारत का इस संदर्भ में लंबे समय से विवादरहित पक्ष रहा है और भारत अप्रसार के सिद्धांत स्वतः जुड़ा हुआ है और भारत ऐसी संधी पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता है क्योंकि इस संधि के जरिये नाभिकीय हथियार से संपन्न और नाभिकीय हथियार विहीन देशों के भेदभाव होगा। वास्तविक अप्रसार संधि तभी संभव है जब अमेरिका और रूस अपने विशाल नाभिकीय हथियारों के भण्डार को कम करने के लिये एक–दूसरे से बात करें। एक जिम्मवार संप्रभुता संपन्न भारत ने पहले नाभिकीय हथियारों के उपयोग न करने के वायदे को हमेशा बनाये रखा है। इस तरह भेदभाव भरी नाभिकीय अप्रसार संधि हमें स्वीकार नहीं है।

वहीं दूसरी तरफ अमेरिका के द्वारा हस्ताक्षर किये हुये अंतर्राष्ट्रीय नाभिकीय समझौते जिसके कारण और अधिक नाभिकीय बमों का उत्पादन नहीं हो सकता, के अलावा ओबामा सरकार भारत को एक अन्य नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर के लिये भारत पर दबाव बना रही हे। अब बारी भारत की है कि दूसरी बार बने भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह इस अमेरिकी दबाव के सामने मजबूती से खड़े हों। पूरा देश देख रहा है कि संप्रग सरकार इस मामले पर कैसा रूख अपना रही है।

अमेरिका के साथ लम्बित सैनिक समझौते

अमेरिकी सैनिक इच्छुक है कि भारत के साथ लम्बित तीन महत्वपूर्ण सैनिक समझौते जल्दी से जल्दी लागू किये जायें। एक शीर्षथ अमेरिकी सैनिक कमाण्डर – अमेरिकी पैसिफिक कमाण्डर चीफ एडमिरल तिमोटी किटिंग भारत के हाल के दौरे में कई शीर्ष भारत के अधिकारियों से मिला और इन संधियों के शीघ्र लागू करने की सभावनाओं को टटोला, ध्यान रहें यह संधिया पिछले सरकार में लम्बे समय से वामदलों के दबाव से लम्बित थी। लम्बित समझौतों में – कम्युनिकेशन्स इण्ट्रो पैराबिलिटी एण्ड सिक्युरिटी मेमोरेण्डम वह एग्रीमेंट (सीआईएसएमओए), एण्ड यूज वेरिफिकेशन एग्रीमेंट और लोजिस्टिक सपोर्ट एग्रीमेंट आदि समझौते हैं। इन समझौतों के जरिये गोपनीय सूचनायें व्यवहार रूप लेंगी और एण्ड यूज वेरिफिकेशन अपनी उपस्थिति हर जगह सामरिक समीकरणों की प्राथमिकता के नाम पर अमेरिका रख सकेगा। कम्युनिकेशन्स इण्ट्रो पैराबिलिटी एण्ड सिक्युरिटी मेमोरेण्डम एग्रीमेंट के जरिये दोनों देश गोपनीय सूचनाओं, सैनिक भण्डारण और गतिविधियों से जुड़ी के आदान–प्रदान के बाध्य होंगे। एण्ड यूज वेरिफिकेशन एग्रीमेंट के जरिये अमेरिका भारत के ऊपर कड़ी निगाह रख सकेगा की उसके भेजें सैनिक साज उपकरण उसके उद्देश्य में प्रयुक्त हो रहे हैं या नहीं। लोजिस्टिक सपोर्ट एग्रीमेंट के जरिये अमेरिकी पोत और एयरक्राफ्ट भारत में ईंधन भरवा सकते हैं और पोत और एयरक्राफ्ट अमेरिका और उसके प्रभाव क्षेत्र वाले क्षेत्रों में ईंधन भरवा सकते हैं।

एडमिरल किटींग ने कहा की पूर्व में भारत और अमेरिकी संयुक्त अभ्यास जैसे मालाबार में हुआ था, दोनों पक्षों को सीखने के लिये एक अच्छा अनुभव रहा है। उन्होंने आशा व्यक्त की की इन समझौतों के जरिये हम और अधिक अच्छा अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय सैनिक प्रतिष्ठानों ने ऐसे किसी समझौते का शुरू से ही विरोध किया है। अमेरिकी सैनिक अधिकारी नयी संप्रग सरकार से जल्दी ही हरी झण्डी पाना चाहते हैं। नाभिकीय समझौते के साथ इन समझौतों को करके भारत अमेरिका का और मजबूती से सामरिक भागीदार बन जायेगा।

करोड़पति नेता - कंगाल देश

एस.पी. तिवारी (राष्ट्रीय महासचिव टी.यू.सी.सी.)

पिछले अंक में देश के कुछ चुनिंदा नेताओं की 2004 से 2009 वर्ष के बीच बढ़ी हुयी आय एवं सम्पत्ति का ब्यौरा प्रस्तुत करते हुये, यह बताने का प्रयास किया था कि देश का भाग्योदय तो सदियों दूर है पर वर्तमान कुछ और नेताओं का भाग्योदय दिन दूना रात चौगुना हो रहा है। आइये कुछ और नेताओं का लेखा-जोखा लेते हैं और भाजपा की "इण्डिया साइनिंग" और सोनिया मैडम की "भारत राष्ट्र निर्माण योजना" की असलियत रुबरू हो लेते हैं।

नेता/पार्टी	सम्पत्ति (करोड़ रु०)	
	2004	2009
श्री लालकृष्ण आडवाणी (भाजपा)	1.29	3.55
श्री जसवंत सिंह (भाजपा)	6.09	12.00
श्री प्रणव मुखर्जी (कांग्रेस)	1.52	3.57
श्री संदीप दीक्षित (कांग्रेस)	0.61	2.31
श्री रेणुका चौधरी (कांग्रेस)	13.69	38.15
श्री गुरूदास कामत (कांग्रेस)	2.08	10.26
श्री संतोष मोहन देव (कांग्रेस)	1.12	10.11
श्री मिलींद देवड़ा (कांग्रेस)	4.5	17.17
प्रिया दत्त (कांग्रेस)	4.25	34.74
अबु आजमी (सपा)	4.24	122.0
श्री अखिलेश यादव (सपा)	0.99	3.75
श्री एच.डी. कुमारस्वामी (जद-स)	4.94	48.47

कुछ राजनैतिक उत्तराधिकारियों का लेखा-जोखा

नेता	सम्पत्ति
श्री जी. विवेकानंद (पुत्र जी. वेंकटस्वामी कांग्रेस)	72.95
श्री वाई.एस. जगमोहन रेड्डी (पुत्र श्री वाई.एस. राजशेखर रेड्डी कांग्रेस)	77.0
श्री दुष्यंत सिंह (पुत्र श्री जसवंत सिंह (भाजपा)	7.75

कुछ अन्य श्रेत्रीय व निर्दलीय उम्मीदवार

नाम	पार्टी/क्षेत्र	सम्पत्ति (करोड़ में)
श्री दीपक भारद्वाज	बसपा/दिल्ली	622.00
श्री खेमजी	बसपा/सुरेन्द्र नगर	514.00
श्री करण सिंह तंवर	बसपा/दक्षिण दिल्ली	150.00
श्री एल.राजगोपाल	कांग्रेस/विजयवाड़ा	299.00
श्री आर. सुरेन्द्र बाबु	जद(स)/बैंगलुरू(उ.)	108.45
श्री एन. नागेश्वर राव	तेदेपा/खम्माम	173.75

आप समझ लें कि राजनीति धीरे-धीरे पेशावरी व जबरदस्त मुनाफे का सौदा बनती जा रही है तभी तो पिछले लोकसभा चुनाव यानि 2004 में करोड़पति उम्मीदवारों का देश में प्रतिशत 9 था, जबकि इस बार पुरे देश में 842 करोड़पति उम्मीदवारों के साथ यह आँकड़ा 16 प्रतिशत पर जा पहुँचा है। उत्तर भारत में चुनाव आयोग की लगाम के चलते बाहूबलियों की संख्या स्थिर हुयी तो पार्टियों ने दक्षिण भारत की तर्ज पर उम्मीदवारी तय करते समय आर्थिक सम्पन्नता वाले उम्मीदवारों को प्राथमिकता देना शुरू किया यानि टिकट ज्यादातर उन्हें ही दिये गये जो पैसे व बाहुबल से सम्पन्न थे। बसपा ने कुल 22 अपराधिक छवि वाले उम्मीदवार मैदान में उतारे। देश के 77 प्रतिशत यानि 83 करोड़ लोग जो 20 रु० या उससे कम पर जीवन

यापन करते हैं – के लिये इसे बढ़कर क्रूर मजाक और क्या हो सकता है – जिसके सत्ता के सौदागर बड़ी पूँजी के मालिक हैं और वोट देने वाली ग्रामीण जनता इनके जाल में उलझी हुयी है।

इण्डिया के नेताओं को मालूम है – भारत के गरीबों के वोट आसानी से खरीदे जा सकते हैं। लोकतंत्र में राष्ट्रभक्त इन नेताओं द्वारा पिछले 62 वर्ष के विकास की कहानी अन्तर्राष्ट्रीय मापदंडों द्वारा आप जरूर देखना व जानना चाहेंगे।

(1) संयुक्त राष्ट्र द्वारा पेश की गयी मानव विकास समीक्षा में भारत को 132वाँ स्थान जो सोलोमन द्वीप (अपने सिक्कीम राज्य से भी छोटे) देश से पीछे है।

(2) युनिसेफ द्वारा नये जन्में बच्चों की मृत्युदर 1000 में 67 हैं जो भीले जैये देश से भी ज्यादा। भूख से बच्चों की मृत्यु के मामले में भारत बांग्लादेश से भी पीछे है।

(3) ढीली न्याय व्यवस्था के मामले में विश्व बैंक की रिपोर्ट ने भारत को नेपाल और बांग्लादेश से भी पीछे यानि 122 वें स्थान रखा है।

(4) विश्व अर्थ समीक्षा ने बुनियादी जरूरतों की पूर्ति तथा असंगत कार्यपालिका के मामले में भारत 50वाँ स्थान दिया है।

(5) यातायात, संचार व सेवा के मामले में भारत साइप्रस, क्रोशिया एवं जार्डन जैसे देशों से भी पीछे है।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय पारदर्शिता परिषद ने भारत को 85 वां स्थान दिया है।

(7) भारत में कुल जनसंख्या के 41.6 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं व अपने कार्य को कराने हेतु करीब 900 करोड़ रुपया घूस के रूप में देते हैं।

(8) भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति मीनट 30 नवयुवकों का शहर की ओर पलायन हो रहा है।

कुछ और पलायन हो रहा है।

(क) देश के 12 से 35 वर्ष आयु की जनसंख्या 52.1 प्रतिशत जो कि विश्व में सबसे सम्पन्न देश अमेरिका की 51.8 प्रतिशत से भी ज्यादा है।

(ख) 31.1 प्रतिशत नौजवान शहर में जबकि 68.9 प्रतिशत गाँवों में निवास करते हैं।

(ग) 45 प्रतिशत नौजवान विवाहित हैं जिसमें 63 प्रतिशत महिलायें शादी–शुदा है।

(घ) 86.9 प्रतिशत नौजवान फील्म नहीं देखते, 76.8 प्रतिशत रेडियो नहीं सुनते, 7.8 प्रतिशत कृषि मजदूर एवं 7.4 प्रतिशत अन्य मजदूर के रूप में काम करते हैं।

अब तो शायद आप की सोचने को बाध्य होंगे कि आखिरकार हमारे देश की जनता का क्या हाल है, देश की परिस्थिति क्या है और देश में राज करने वाले सत्ता के सौदागरों की सोच कहां जा रही है, देश के दलितों के हाल भी यदि आप देख लें तो थोड़ी तसल्ली और हो जायेगी।

देश में दलितों की स्थिति:

(1) हर दिन 18 दलितों के साथ अपराध हो रहा है।

(2) प्रतिदिन औसतन 3 दलित महिलाओं से बलात्कार होता है।

(3) 2 दर्तों की औसतन हत्या होती है।

(4) देश के 39 प्रतिशत गाँवों में दलितों के घर स्वस्थ्य अधिकारी नहीं जाते।

(5) 23.5 प्रतिशत गाँवों में दलितों के घर पत्र नहीं पहुँचाये जाते।

(6) देश के 48.4 प्रतिशत गाँवों में दलितों के पास जल स्त्रोत उपलब्ध नहीं है।

(7) 27.6 प्रतिशत गाँवों में दलितों को पुलिस थाने में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है।

उपरोक्त सभी तथ्य विभिन्न महत्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं तथा संस्थानों से संकलित है अत: इन पर अविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता)

अब इस भारत को 'चमकता हुआ भारत' या फिर 'आम आदमी का भारत' या कंगाल भारत क्या कहना पसंद करेंगे, फैसला आपको करना है, हमने तो खुली किताब आपके सामने रख दी है।

समाज व्यवस्था व राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन के वगैर इस मुल्क में कुछ नहीं हो सकत, 20 से 22 प्रतिशत लोग मजे लेंगे। 14 से 18 प्रतिशत इसमें शामिल होने की जुगत में रहेंगे बाद बाकी अँग्रेजों, मुगलों व तत्कालीन भारतीय राजाओं आदि की प्रजी की तरह बस हुक्म की तामिल करेंगे।

नरेगा का सच

एस. पी. तिवारी

27 मई 2004 को संप्रग सरकार द्वारा 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' जारी किया गया, जिसके तहत सरकार ने वादा किया कि इस योजना के तहत

विकास हित में आधारभूत सिद्धांतों का अनुपालन किया जायेगा, ताकि देश का विकास हो सके।

1. सामाजिक भाईचारे के विकास, उसकी रक्षा, संरक्षण के लिये सरकार काम करेगी तथा सामाजिक भाई चारे और शांति को भंग करने वालों के खिलाफ कठोर कार्यवाही करेगी।

2. सरकार अर्थव्यवस्था की विकास दर 7 प्रतिशत से 8 प्रतिशत एक दशक तक लगातार कायम रखेगी, जिससे रोजगार सृजित हो व हर परिवार सुरक्षित जीवनयापन कर सकें।

3. किसानों, खेतिहर मजदूरों व असंगठित मजदूरों की दशा सुधारने, हितों को बढ़ाने तथा भविष्य को सुरक्षित रखने के लिये काम करेगी।

4. महिलाओं का राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक और कानूनी तौर पर सशक्तिकरण के लिये काम करेगी।

5. अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ों और धार्मिक अल्संख्यकों को शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में सामान अवसर मुहैया करायेगी।

6. सरकार उद्यमियों, व्यापारियों, वैज्ञानिकों, इंजिनियरों और समाज के सभी अन्य पेशा वाले की उत्पादक शक्तियों की सृजनात्मक उर्जा को सामने लाने पर काम करेगी।

ग्रामीण स्तर पर बेरोजगार लोगों को रोजगार दिलाने हेतु 2 फरवरी 2006 को नरेगा कानून पारित किया गया। इस कानू के तहत महत्वपूर्ण कदम उठाने के लिये निर्णय लिये गये।

(क) नरेगा के संदर्भ में सामाजिक लेखा जोखा में सार्वजनिक निगरानी।

(ख) नरेगा क्षेत्रों में नौजवानों को रोजगार जो कि प्रति परिवार काम से कम 1 व्यक्ति होगा।

(ग) जिस व्यक्ति को 100 दिन काम नहीं मिल जायेगा, उन्हें न्यूनतम वेतन के हिसाब से गुजारा भत्ता दिया जायेगा।

(घ) ग्रामीण क्षेत्रों में जिला कलैक्टर के माध्यम से जॉब कार्ड विस्तारित किये जायेंगे।

कहाँ है नरेगा का पैसा, कहाँ गया गुजारा भत्ता, कहाँ गया न्यूनतम वेतन आदि, नेता व कार्यपालिका ने पूरे कार्यक्रम को अपनी जागीरदारी बनाया व मनमाने ढंग से सारे कोष का व्यक्तिगत इस्तेमाल तक कर डाला।

फारवर्ड ब्लॉक का औचित्य

- सुभाष चन्द्र बोस -

दक्षिणपंथी उस समय पूरी तरह से अँग्रेजों की मुट्ठी में थे। कुछ वामपंथी भी उस समय अँग्रेजों के यंत्र बने हुये थे। सही मायने में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की चेष्टा खत्म हो चुकी थी। सभी सत्ता का बंटवारा कर लेना चाहते थे। नेताजी ने अनुभव किया कि साधारण तौर पर संग्राम करने का जोश खत्म सा हो गया है। जब ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता का संग्राम करना होगा। इसके लिये एक सुगठित सेनावाहिनी की आवश्यकता है। यह देश के भीतर रह कर नहीं बन सकती। इसीलिये सन् 1941 के जनवरी महीने में उन्होंने एक लेख लिखा - 'फारवर्ड ब्लॉक का औचित्य'। यह काबुल थीसित के नाम से जाना जाता है। यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इश्तहार था।

गहरी श्रद्धा के साथ इसे संकलित किया गया है 'नेताजी उद्‌बोधन ग्रन्थमाला के इस नवम खण्ड में।

आन्दोलन का विकास : द्वन्दात्मक

प्रत्येक आन्दोलन के विकास की तुलना वृक्ष क विकास से की जाती है। अंतर प्रेरणा से ही इसका विकास होता है और प्रत्येक स्तर पर इसमें विभिन्न शाखा एवं उपशाखाओं विचारों एवं सोच की वृद्धि होती है जिससे कि निरन्तर प्रगति बनी रहती है। अगर शाखायें निकलनी बन्द हो जायें तो समझ लेना होगा कि आन्दोलन शिथिलता अथवा मृत्यु की ओर जा रहा है।

हालांकि यह सत्य है कि जिस जमीन से आन्दोलन जन्म लेता है उसी से वह शक्ति प्राप्त करता है लेकिन बाहरी आवो-हवा, परिस्थितियाँ आदि भी आन्दोलन को पालती है। प्रत्येक जिन्दा आन्दोलन के लिये भीतरी ताकत और बाहरी पालन-पोषण बहुत ही आवश्यक है।

आन्दोलन में जोर रहने के बावजूद भी जब-उसके मुख्य स्त्रोत में सुस्ती आ जाती है तब उसमें वाम (पंथ) पक्ष का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है। उस वाम (पंथी) पक्ष का मुख्य काम होता है कि प्रगति को, बिना किसी भी रूकावट की परवाह किये, नये जोर-शोर से आगे बढ़ाना। वाम (पंथी) पक्ष के सामने आ जाने से इसका तत्कालीन मुख्यधारा से विरोध होना स्वाभाविक है। यह विरोध अस्थायी होगा। इसी संघर्ष से गुजर कर आन्दोलन एक ऐसे स्तर पर पहुँच जायेगा - जहाँ यह विरोध खत्म हो जायेगा।

संघर्ष की समाप्ति से एक ऐसी अवस्था अवभूत होती है जिसके फलस्वरूप वामपंथी दल सारे आन्दोलन पर छा जाता है और वामपन्थ ही आन्दोलन की प्रमुख धारा का स्थान ले लेता है।

इस प्रक्रिया को कुछ लोग दार्शनिक भाषा में इस तरह भी कहते है क्रिया (थिसीस) से ही प्रतिक्रिया (एन्टी थिसीस) की उत्पत्ति होती है औ इन दोनों के संघर्ष से ही ''समन्वय'' (सीन्थेसिस) का प्रादुर्भाव होता है। यह ''समन्वय'' ही आगे चलकर विकास की अगली सीढ़ी पर ''क्रिया'' (थिसीस) की भूमिका ग्रहण कर लेता है।

विकास की इस द्वान्द्वात्मक प्रक्रिया का अगर ठीक से विश्लेषण किया जाये तो पिछले कई वर्षों में इण्डियन नेशनल कांग्रेस में जो परिवर्तन और घटनायें हुयी है उनका नया अर्थ और महत्व सामने आ सकता है। इसी द्वान्द्वात्मक प्रक्रिया की कसौटी पर अब हम गाँधी आन्दोलन का अध्ययन करेंगे।

इस हालत में यह मानकर चलना कि किसी भी परिस्थिति में आन्दोलन के दौरान मतभेद या विरोध अस्वस्थ या गैर जरूरी है, गलत होगा। वास्तव में यह कहना ज्यादा सही है कि ऐतिहासिक कारणों से जो मतभेद होते हैं, चाहे वे सिद्धांत क्षेत्र में हों या कार्य क्षेत्र में, प्रगति के लिये जरूरी और लाभदायक ही होते हैं।

इस सम्बन्ध में कोई कड़ा नियम नहीं है कि कब सुस्ती। जब तक आन्दोलन में भीतर से ताकत हासिल करने व बाहर से ताकत इकट्ठा करने की शक्ति रहती है तब तक उसमें कम-जोरी नहीं आती।

गाँधी आन्दोलन का विवेचन

अब गाँधी आन्दोलन का जरा विश्लेषण करें। पहले विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद 1919 में हिन्दुस्तान में नयी परिस्थितियाँ और उनके अनुरूप नयी-नयी समस्यायें पैदा हुयी। इन बदलती हुयी परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति उस समय की कांग्रेस खो चुकी थी और कांग्रेस के भीतर एक मजबूत वाम पंथी गुट की जाहिर तौर पर जरूरत महसूस की जा रही थी। इस चौराहे पर गाँधी आन्दोलन वामपंथी गुट के रूप में सामने आया। विरोध मतभेद चलते रहे। पुराने नेता कांग्रेस से निकाल दिये गये या खुद ही निकल गये। आखिर 'समन्वय' हुआ कांग्रेस को गाँधी जी के सिद्धान्तों को मानना पड़ा की वामपंथी गुट कांग्रेस पर हावी हो गया।

जो पिछले 20 वर्षों से कांग्रेस कार्यक्रम चला आ रहा है, 1920 में गाँधीवाद ने उस कांग्रेस पर कब्जा किया। यह सिर्फ महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का प्रभाव नहीं था बल्कि उनकी दूसरों के सिद्धान्तों और विचारों को अंगीकार करने की क्षमता का ही बड़ा योगदान था। यदि ऐसा न होता तो कांग्रेस बहुत पहले ही गांधीवाद के कब्से से निकल चुकी होती। पिछले 20 वर्षों (1920-1940) के दौरान जब भी कोई विद्रोह के चिन्ह प्रगट हुये गाँधी आन्दोलन ने उनके सिद्धान्तों या विचारों को अपनाकर उस विद्रोह को दबा दिया और सिर्फ पिछले कुछ दिनों से बदलती हुयी परिस्थितियों में वह अपने को खपा नहीं पा रहा है। उदाहरण के लिये 1923 में बनी 'स्वराज्य पार्टी' का कांग्रेस के साथ मतभेद कुछ समय तक चला। 1925 में हुई कानपुर कांग्रेस ने 'स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम लेकर भी विधान सभाओं में माना असहयोग आन्दोलन को पहले गाँधीवादियों ने और बाद में कांग्रेस संस्था ने मान लिया।

इसके बाद दिसम्बर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न को लेकर 'स्वतंत्र लीग' ने गांधीवाद के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। गाँधी जी डोमिनियम स्टेट्स (संघ शासन) के पक्ष में थे। हमारे पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव को हराया लेकिन एक साल बाद वामपंथी दबाव से प्रेरित हो 1929 की लाहौर कांग्रेस में उन्होंने खुही 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता में बदल दिया कांग्रेस खत्म नहीं हुयी। 1934 और उसके बाद गाँधीवादियों का रुख कांग्रेस सोशलिस्टों और अन्य वामपन्थियों की ओर दयालुता और नरमी का था। यह सच है कि 1936-37-38 कांग्रेस समाजवादियों को भी कांग्रेस कार्यकारिणी में स्थान दिया गया था। 1938 में कांग्रेसी समाजवादियों ने इसे ठुकरा दिया था। गांधी जी के इशारे पर गाँधीवादियों ने जनवरी 1938 में कांग्रेस सभापति पद के लिये मेरा समर्थन किया था और जब मैं 1938 में कांग्रेस सभापति पद के लिये मेरा समर्थन किया गया था और जब मैं 1938 में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के समय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को नियुक्त करने वाला था उस समय गाँधी जी को कांग्रेस कार्यकारिणी में समाजवादियों के शामिल करने में कोई आपत्ति नहीं थी।

सितम्बर 1938 में दिल्ली में हुयी अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की सभा के बाद गाँधी जी में एक अनोखा परिवर्तन आया। (कारण आज तक स्पष्ट नहीं हो सका है)। इस सभा में वामपन्थियों ने एक विवादास्पद प्रश्न पर वाक-आउट किया था। उसी समय किसी ने गाँधी जी को यह कहते सुना था कि ''कांग्रेस के संचालन के मामले में वामन्थियों से कोई समझौता नहीं किया जायेगा।'' कुछ ही महीनों बाद जनवरी 1939 में उन्होंने इस मनोभाव का सबूत मेरे द्वारा सभापति चुने जाने का विरोध करके दिया।

........शेष अगले अंक में